



हिंदि का दलित साहित्य एवं ओमप्रकाश वाल्मीकि

HINDI KA DALITH SAHITYA EVAM OMPRAKASHVALMIKI

MOHAMMAD NAHIDA

Research Scholar in Ph.D. Dept of Hindi, Acharya Nagarjuna University

‘दलित साहित्य’ का जन्म ‘दलित आंदोलन’ से हुआ है। भारत का एकमात्र ऐसा जन आंदोलन है, जिसके मूल में यहाँ की वर्ण तथा जाति-व्यवस्था है और शास्त्रों द्वारा इसका समर्थन करने वाला ‘धर्म’ है। ऐसे जन आंदोलन से प्रेरणा लेकर इस साहित्य का जन्म हुआ है। दलित साहित्य का जन्म पहले मराठी में हुआ बाद में हिंदी में दलित साहित्य की पिरभाषा को लेकर भ्रम की स्थिति है, जो कि काफ़ी हद तक प्रयोजित है। जबकि मराठी में ऐसी स्थिति नहीं है, उसका दलित साहित्य काफ़ी समृद्ध है। ज्योतिबा फुले तथा डॉ. अम्बेडकर जैसे महान विभूतियों के युग प्रवर्तक विचारों से वह पल्लवित हुआ है तथा समाज सुधारकों के सान्निध्य - संरक्षण में पल्लवित-पुष्पित मराठी का दलित साहित्य इस तरह के सभी विवादों से ऊपर उठ युका है। हिंदी में जो वर्ग लम्बे समय से दलित-साहित्य की जरूरत व अस्तित्व को नकार रहा था, उसी का एक हिस्सा आज की बदली हुए परिस्थिति में दलित साहित्यकार बन उसकी दिशा को भ्रमीत कर रहा है।

दलित साहित्य के पक्ष में यह कहना गलत नहीं होगा कि अनुभूति की प्रामाणिकता इस साहित्य में अपेक्षाकृत अधिक है। क्योंकि दलित लेखक घटना-परिघटनाओं का स्वयं साक्षी है। गैर दलित साहित्यकारों ने दलित जीवत विषयक साहित्य रचा है। लेकिन यह साहनुभूति और संवेदना के विस्तार का प्रश्न है। गैर दलितों के विपुल साहित्य - भंडार में दलितों पर नगण्य सामग्री है, वह भी ज्यादातर काल्पनिक एवं अप्रामाणिक है। अनुभूति की प्रामाणिकता तो स्वयं दलितों द्वारा रचित दलितों में चेतना जगाने की शक्ति जिस लेखन में है वही दलित साहित्य है।

इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए डॉ. गंगाधर पान्तावर्णे ने एक साहित्यिक सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में कहा था “भाइयों हमारे साहित्य की प्रेरणा केवल डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर और उनकी क्रांतिकारी विचार - धारा है। इसमें कोई संदेह नहीं। की समालोचक दलित साहित्य का रिश्ता कभी मार्क्सवाद से तो कभी हिन्दूत्ववाद से या सभी नीग्रो साहित्य



से जोड़ते हैं। मैं इस अम्बेडकर विचार मंच पर फिर एक बार दोहराता हूँ कि हमारे दलित साहित्य की प्रेरणा, न मार्क्सवाद है न हिन्दुत्ववाद, ना नीग्रो साहित्य है - अछूत नहीं था और नहीं हैं'' इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि मार्क्सवाद और हिन्दुत्ववाद की बजाय बाबा साहेब की क्रांतिकारी विचार - धारा से प्रभावित होकर दलितों द्वारा दलितों के लिए दलित जीवन की अभिव्यक्ति ही दलित साहित्य है।

दलित साहित्य दलित समाज की वास्तविकता की पहचान कराने वाला साहित्य है। वह अगड़े लोगों के वर्चस्व के विरुद्ध दलित चेतना का प्रचार-प्रसार करता है। समता अस्मिता के उन्नायक दलित साहित्य ने वर्तमान परिवेश में परिवर्तन की लहर पैदा करते हुए सत्ता की सहयोगिता हेतु जन अभियान छेड़ दिया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ अपने रचनात्मक कौशल, संवेदना और शिल्प हर आयाम पर दलित कहानियाँ होते हुए भी यथार्थवादी कहानी परंपरा की एक मजबूत कड़ी हैं। और वाल्मीकि जी की आत्मकथा की रचना पूर्वदीप्ती एवं वार्तालाप शैली में की है। उक्त मिश्रित शैलियों में रचित इस कृति में हिन्दू समाज की वर्ण व्यवस्था के प्रति खुला विद्रोह हुआ है, जो लेखक के व्यक्तित्व की विशेषता है।

कहानियों के क्षेत्र में दलित जीवन के संदर्भों को लेकर लिखी गई ऐसी बहुत-सी कहानियाँ हैं जो कहानी के रचना विधान की किसी भी कसौटी पर, अंतर्वस्तु, संवेदना और शिल्प के हर आयाम पर कहानी की यथार्थवादी परंपरा को न संवृद्धि प्रदान करती है। इन कहानियों के जरिये दलित जीवन के कुछ ऐसे पहलू पहली बार उजागर हुए हैं जो अब तक नितांत अनदेखे और अनछुए थे। अल्प अवधि के इस दलित लेखन में जिन्होंने भी दलित रचना शीलता और हिंदी की बृहत्तर सर्जना में अपनी खास पहचान बनाई है, उनमें से ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम सहज ही सबसे ऊपर है। मजबूती के साथ खड़े रहकर भी उनमें प्रतिपक्ष के विचारों को सुनने और तर्क की जमीन पर उचित को स्वीकार करने का मद (दुभिमान) भी है।

दलित कहानियों के संदर्भ में प्रकाश मनु का कहना है कि "हिंदी के इन सहज कथाकारों में दलित कथाकार का उल्लेख किया जाना चाहिए। ओमप्रकाश वाल्मीकि,



शयौराजसिंह बैचैन, प्रेम कुमार मणि, चंद्रशेखर कर् , आदि की कहानियों ने भारतीय समाज के एक ऐसे रोंगटे खड़े कर देने वाले यथार्थ की ओर हमारा ध्यान खींचा है, जिसे पहले चादर की ओट कर दिया जाता था । इस संदर्भ में वे आगे लिखते हैं कि ओमप्रकाश वाल्मीकि की प्रमोशन, प्रेम कुमार मणि की 'जुगाड़' और चन्द्रशेखर कर्ण की 'सुरंग से गुजरते हुए' कहानियों में अप्रमानों की गहरी चोट है जो सीधे दिल में उतरती है और हक्का-बक्का कर जाती है । दलित साहित्य सच में सभ्यता के नकली मुखौटों की चिंदा-चिंदा कर देने वाला साहित्य है ।''

'बैल की खाल' कहानी में मरे जानवरों की खाल निकालने वाले काले और भूरे दो व्यक्तियों के चरित्र के मानवीय पहलू को उजागर किया । और निस्पृह भाव से काम करने की प्रथा का चित्रण हुआ है । काले और भूरे पता नहीं कहाँ गए हुए थे । तीन तीन बार पंडित बिरिज मोहन स्वयं उनके घर जा चुका था । हर बार एक ही जवाब मिल रहा था, कहीं गए हैं । जैसे जैसे धूप चढ़ रही थी, कुएँ के पास पड़ा मृत बैल गंधियाने लगा था । हर कोई काले और भूरे को खोज रहा था । बिरिज मोहन की आँखों में निराशा तोड़ती हुई चमक दिखाई दी । सामने गली से काले और भूरे चले आ रहे थे । उनको देखते ही पंडित बिरिज मोहन उन पर बिफर पड़ा था, ॥कहाँ मर गए थे भोसड़ी के ... तड़के से ढूँढ-ढूँढ के गोड्डे टूट गए हैं । और अब आ रहे हो महाराज की तरियों ... इस बैल को कौन उठावेगा ... तुम्हारा बाप ...''

आर्थिक क्षेत्र में दलित अनेकानेक आर्थिक अभावों से त्रस्त थे, राजनीतिक अधिकारों से पूर्णतः वंचित थे । शैक्षिक क्षेत्र में उनके अधिकार स्पष्टतः निषिद्ध थे तथा सार्वजनिक जीवन में वे एक दास के रूप में जीवन व्यतीत करने को बाध्य थे । तत्कालीन धर्म ग्रंथों ने इन्हें अधः तन के गर्त में गिरा दिया था । क्योंकि शूद्रलोग इन असमानताओं एवं निर्योग्यताओं से पहले से ही अभिभूत नहीं थे अपितु निर्योग्यताएँ तत्कालीन हिन्दू धर्म ग्रन्थों में वर्णित व्यवस्थाओं की परिणति थी ।

'बिरमा की बहू' कहानी में रमेसर एक जगह कहता है कि ''दिन-भर की हाड़-तोड़



मेहनत के बाद जो कुछ भी मिलता वह इतना कम था कि तीन प्रणियों का गुजारा भी मुश्किल था। ऊपर से बेगार करनी पड़ती थी सो अलग। जो मूलधन के सूद की तरह जरूरी थी। कोई तर्क, कोई कानून, कोई भावना, इसे रोक नहीं पा रही थी। रमेसर ने बहुत बार सोचा कि इस बेगार प्रथा को तोड़ देगा। जब भी कोई बुलाने आएगा नहीं जाएगा। उसका यह सोचना गुब्बारे की हवा की तरह फुस्स हो जाता था। उसका ही क्या भंगी-बस्ती में सबकी यही हालत थी। बेगार के बदले मिलती भी प्रताड़ना, लांछना, गाली और अपशब्द। जैसे ये लोग आदमी नहीं, मात्र इसतेमाल की वस्तु हों। जब चाहा इस्तेमाल किया। टूट - फूट गई तो उठाकर फेंक दिया। कहीं कोई सहानुभूति नहीं, कोई संवेदना नहीं।”

ओमप्रकाश वाल्मीकि भले अपने को दलित लेखन के दायरे में रखे, उनकी कहानियों में उनका रचना सामर्थ्य और उनकी सोच के जो पहलू उभरे हैं वे उन्हें हिंदी की यथार्थवादी कहानी परंपरा के दायरे के एक समतावान लेखक के रूप में हम से मुख्याबित करते हैं। और वाल्मीकि जी की कहानियाँ इस पहले के प्रति हमें सहज तो करती ही हैं, वे अनुभव के एक ऐसे संसार में भी, जहाँ वर्ग, वर्ण, धर्म और संप्रदाय के भेदों से अलग हम आदमी और आदमियत से मुख्याबित होते हैं।

दलित परंपरागत मूल्यों से मुक्ति पाना चाहता है लेकिन सवर्ण कभी नहीं चाहेंगे कि दलितों को मुक्ति हासिल हो। उन्हें ये बिलकुल पसन्द नहीं है कि परम्पराओं की रूढ़ीबद्धता से दलित छुटकारा पा सके। 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी में सुदीप पच्चीस का चौका गलत रटता है तो मास्टर आँखें तरेर कर चीखा "अबे तेरा बाप इतना बड़ा विद्वान है तो यहाँ क्या अपनी माँ ... (एक क्रिया-जिसे सुसंस्कृत लोग साहित्य में त्याज्य मानते हैं) ... आया है साले, तुम लोगों को चाहे कितना भी लिखाओ, पढ़ाओ ... रहोगे वहीं - के - वहीं ... दिमाग में कूड़ा-करकट जो भरा है। पढ़ाई-लिखाई के संस्कार तो तुम लोगों में आ ही नहीं सकते। चल बोल ठीक से ... पच्चीस चौका सौ ... स्कूल में तेरी थोड़ी-सी तारीफ कया होने लगी पाँव जमीन पर नहीं पड़ते। ऊपर से जबान चलावे है। उलटकर जवाब देता है।” वे प्रतिपक्ष से संवाद करते हैं, वितंडा नहीं। वस्तुतः संवाद की सही ज़मीन भी यही



है ।

जाति व्यवस्था हिंदू समाज का मुख्य लक्षण है । असमानता ही इसका प्मुख लक्षण है । एक जाति दूसरे जाति से भिन्न होती है । भिन्न दो जातियों में समानता दिखाई नहीं देती । जाति के नाम पर ही भिन्न - भिन्न श्रेणियों में लोगों को बाँटा गया, जिससे सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं । मजबूरन बेटे को अपने बाप का पेशा ही करना पड़ा चाहे वह जितनाही प्रतिभाशाली क्यों न हो ।

हमारी 'समाज व्यवस्था' के तहत शिक्षा संस्थानों में दलितों के साथ बहुत ही अन्याय होता है । जीवन के पबले अध्याय यानी शिक्षा की जगह से ही उन्हें यातनाओं का सामना करना पड़ता है । पाठशाला में बच्चे तो भेदभाव करते ही हैं लेकिन बच्चों के साथ सवर्ण शिक्षक भी उन्हें मानों जानवरों के बच्चे समझते हैं । उनका हर कदम पर अपमान करते हैं । उन पर छुआ-छूत का नियम लगाया जाता है । अनेक प्रकार की यातनाओं का साना करना पड़ता है । जिसे हम 'जूठन' आत्मकथा में देख सकते हैं ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने छात्र जीवन के बारे में बताया हैं कि - "त्यागियों के बच्चे 'चूहड़े' का कहकर चिढ़ाते थे । कभी-कभी बिना कारण पिटाई भी कर देते थे । एक अजीब सी यातना - पूर्ण जिंदगी थी, जिसने मुझे अंतर्मुखी और चिड़चिड़ा तुनकमिजाजी बना दिया था । स्कूल में प्यास लगे तो हैंडपंप के पास खड़े होकर किसी के आने का इंतजार करना पड़ता था । हैंडपंप छूने पर बबाल हो जाता था । लड़के तो पीटते ही थे । मास्टर लोग भी हैंडपंप छूने पर सजा देते थे । तरह-तरह के हथकंडे अपनाए जाते थे ताकि मैं स्कूल छोड़कर भाग जाऊँ, और मैं भी उन्ही कामों में लग जाऊँ, जिनके लिए मेरा जन्म हुआ था । उनके अनुसार स्कूल आना मेरा अनाधिकार चेष्टा थी ।"

आर्थिक स्थिति ही मनुष्य के संतोष और उसके विविध वस्तुओं को प्राप्त करने का माध्यम है । जीवन में जिन साधनों की अपेक्षा रहती है वे 'अर्थ' के बिना सुलभ नहीं है अर्थात मानवशास्त्र का जीवन ही 'आर्थिक' स्थिति पर निर्भर है । इसलिए कहा जाता है कि 'धनम् मूलम् इहम् जगत' । अर्थात धन ही सबका मूल है । लेकिन यह उक्ति दलितों के संदर्भ में सही प्रतीत नहीं होती क्योंकि इस व्यवस्था में धन सबके मूल में नहीं है बल्कि



‘जाति’ ही अहम मुद्दा है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म ‘चमार’ घर में हुआ था, जो आर्थिक परिस्थिति से भी जूझता है । उनका गाँव बरला था, जिसमें मुसलमान और हिन्दू भी रहते थे । फिर भेदभाव करते थे यहाँ पर वाल्मीकि दलितों के रहन-रहन की स्थिति को बताते हैं कि - “चन्द्रभान तगा के घर के ठीक सामने एक छोटी सी जोहड़ी, थी, जिसने चुहड़ों के बगड़ और गाँव के बीच एक फ़ासला बना दिया था । ... जोहड़ी के किनारे पर चुहड़ोंके मकान थे, जिनके पीछे गाँव भर की औरतें, जवान लड़कियाँ, बड़ी-बढ़ी यहाँतक कि नई नवेली दुल्हनें भी इसी डब्बों वाली के किनारे खुलेमें भी पर्दों में रहने वाली च्यागी महिलाएँ घूँगटे काढ़े दुशाले ओढ़े इस सार्वजनिक खुले शोचालय में निवृत्ति पाती थी । ... चारों तरफ़ गंदगी भी होती थी । ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में साँस घुट जाए । तंग गलियों में घूमते-सुअर, नंग-धडंग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े, बस यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता । इस माहौल में यदि वर्णव्यवस्था को आदर्श मानने वालों को दो-चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी ।”

दलितों को मनुष्य न बनने देने की उस सवर्ण व्यूह रचना का प्रभावी चित्रण हुआ है । इस संदर्भ में प्रेम सिंह जी अपने विचार व्यक्त करते हैं कि - “जूठन में दलित को मनुष्य न बनने देने की उस सवर्ण व्यूह - रचना का प्रभावी चित्रण हुआ है, जो लोक से लेकर परलोक तक रची गई है । मनुष्य एक निश्चित प्राकृतिक वातावरण और सामाजिक परिवेश के बीच जन्म लेता है । अपने आस-पास की प्रकृति और समाज के साथ अंतःक्रिया करते हुए उसका आंतरिक जगत समृद्ध होता है, उसका मूल्यबोध और सौंदर्यबोध विकसित और पुष्ट होता है ।”

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित आत्मकथा जूठन ने दलित साहित्य और आत्मकथा लेखन को एक नया रासता दिखाया है । सन् 1950 से लेकर 1993 तक भारत के दलितों की क्या समस्या थी, यह हमें ‘जूठन’ का अध्ययन करने से साफ हो जाती है । ‘जूठन’ में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी स्वतः की आत्मकथा को अक्षरों का रूप देकर हिंदी दलित



साहित्य में तहलका मचा दिया है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने प्रकृति को भी अपनी कविता का विषय बनाया है । प्रकृति के माध्यम से अपनी पीड़ा, दुःख, दर्द और भावों को व्यक्त किया है । कहीं-कहीं पर प्रकृति को बिम्ब के रूप में प्रयोग किया है । वर्ण व्यवस्था के कारण ही मनुष्य - मनुष्य में भेद हैं यही नहीं बल्कि सवर्ण दलितों को मनुष्य मानने के लिए भी तैयार नहीं है । दलित जिस किसी वस्तु को बनाता है वह सवर्णों के घर में पहुँचने तक कोई समस्या नहीं होती किन्तु वह वस्तु घर में जाते ही पवित्र हो जाती है । तभी तो इसे छूओ मत, उसे छूओ मत कहा जाता है ।

वर्ण व्यवस्था के कारण ही शूद्रों को सवर्ण पराये लगते हैं । एक व्यक्ति बहुत बड़ा और भव्य साफ-सुथरे बंगले में रहता है तो दूसरा गंदी नालियों के किनारे । इसका कारण भी वर्ण व्यवस्था ही है । ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी 'कभी सोचा है' शीर्षक कविता में सवर्णों से सवाल करते हैं - "कभी सोचा है/गंदे नाले के किनारे बसे/वर्ण व्यवस्था के मारे लोग/इस तरह क्यों जीते हैं? / तुम पराये क्यों लगते हो उन्हें / कभी सोचा है?"

इस वर्ण व्यवस्था के कारण ही मनुष्य - मनुष्य में भेद है । यही नहीं बल्कि सवर्ण दलितों को मनुष्य मानने के लिए भी तैयार नहीं है । जबकि सब माँ की कोख से जन्म लेते हैं । सब की प्रजनन क्रिया एक जैसी ही है । यहाँ जन्म के अनुसार ही ब्राह्मण-शूद्र आदि हो जाता है । वाल्मीकि जी अपनी 'वह दिन कब आयेगा' शीर्षक कविता में व्यंग्य का चित्रण करते हैं ।

इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने व्यंग्य का भी सहारा लेकर समाज में स्थित बुराइयों, त्रुटियों, बाह्यडंबर, मिथ्याचार और विसंगति का पर्दाफाश किया है । घृणा के कारण ही दलितों पर अन्याय, अत्याचार करते आ रहे हैं । वाल्मीकि की कविताओं में वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश और संवेदनाओं को भी सीधे-सीधे अभिव्यक्त किया है ।

'ज्वालामुखी' कविता में ओमप्रकाश वाल्मीकि वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश और विद्रोह के साथ-साथ अपनी भावनाओं और संवेदनाओं को भी सीधे-सीधे अभिव्यक्त



करते हैं। दलित चेतना की सबसे पहली शर्त है उसके विरोध का स्तर पीड़ा की छटपटाहट, आक्रोश का तेवर और उसके साथ ही कहीं उगता हुआ परिवर्तन के लिए एक संकल्प। वाल्मीकि अपनी कविता में लिखते हैं।

सवर्ण हमेशा जाति बोध शब्द का प्रयोग कर दलितों को कदम-कदम पर अपमानित करते हैं। दलित भी अन्य वर्गों की तरह मान-सम्मान चाहता है। दलित अब अपमानित करनेवालों को चेतावनी देता है कि यह सिलसिला नहीं रुकेगा तो हिंसा का सहारा लेना पड़ेगा। डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी अपनी 'मेरी भी सुनो' शीर्षक कविता में आक्रोश और विद्रोह पर विचार करते हैं।

वाल्मीकि जी ने अपनी कविताओं में ऐतिहासिक सन्दर्भों को वर्तमान से जोड़ मिथकों को नए अर्थों में प्रस्तुत किया गया है। दलित कविता में पारम्परिक प्रतीकों, मिथकों को नए अर्थ और सन्धियों से जोड़कर देखे जाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, जो दलित कविता की विशिष्ट पहचान बनाती है। 'किष्किंध' शीर्षक कविता में 'बाली' का आक्रोश दलित कवि के आक्रोश में रूपान्तरित होकर कविता के एक विशिष्ट और प्रभावशाली आयाम को स्थापित करता है - "मेरा अँधेरातब्दील हो रहा है कविताओं में / याद आ रही है मुझे / बाली की गुफा / और उसका क्रोध।"

दलितों के लिए स्वर्ग, नरक की भावनाएँ नहीं हैं। कल की फिक्र उनको नहीं है। श्रम करना और उसी में जीने की आदत हो गई। दलित हमेशा दो वक्त की रोटी के लिए श्रम करता है। स्वेच्छा, स्वतंत्रता, भातृत्व भाव - ये तीन मूलभूत इच्छाओं के लिए हमेशा ललकारता रहता है। इस संदर्भ में मोहनदास नैमिशराय का मत है कि "शोषक वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बंधुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।"

आज दलितों में एक नई चेतना पैदा हुई है। उसका श्रेय डॉ. अंबेडकर को जाता है। समूचे भारत में दलितों ने जीवन के प्रत्येक श्रेत्र में अपनी छाप छोड़ी है, फिर भी दलित होने का जो खामयाज उन्हें भुगतना पड़ता है वह उनके प्रगति पथ में रोड़ा बनकर खड़ा



है। दलित चिंतक भगवान दास का मत इस प्रकार है कि - “गांवों में ऊंची जाति के भूमिधर लोग दलितों को अच्छे कपड़े पहनने, निर्भय होकर मतदान करने, शादी के जुलूम में घेड़े पर चढ़ने, सार्वजनिक कुओं से पीने का पानी लेने और ऊंची जाति के आदमी के खड़े रहने पर सामने चारपाई पर बैठने की इजाजत नहीं देते। शहरों में अनुसूचित जाति के छात्र को जानबूझकर कम अंक दिए जाते हैं। एक अधिकारी को जन्मना अछूत होने के कारण पहले से ही अयोग्य और अक्षम मान लिया जाता है। अछूत परिवार में पैदा हुए प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर, आर्किटेक्ट को उसका काम देखे बिना अक्षम और धटिया करार दे दिया जाता है। एक रोगी अछूत डॉक्टर से इलाज कराने को मना कर देता है और मकान मालिक अछूत के डर से किराये पर उन्हें खाली मकान देने को तैयार नहीं होता। एक उच्च पदाधिकारी अपने अधीनस्थ दलित की प्रोन्नति रोकने के लिए उसकी रिपोर्ट खराब करता है। कैंटीनों, बसों, रेलगाड़ियों और हवाई जहाजों, कार्यालय और संस्थानों में रोजाना अछूत मूल के आदमियों और औरतों पर निकम्मापन थोपा जाता है और घृणित फिकरे कसे जाते हैं। विश्वविद्यालयों और कालेजों में ‘स्वायत्त संस्थानों’ को प्रदत्त शक्तियों और अधिकारों का प्रयोग करते हुए ‘योग्यता’ की रक्षा के लिए छात्रों और अध्यापकों की तरक्की के दरवाजे बंद कर दिए जाते हैं - वह योग्यता जो जाली प्रमाण - पत्रों, परीक्षा में अनुचित साधनों, भाई भतीजावाद और भ्रष्टाचार से प्राप्त की जाती है।”

भारतीय वर्णवादी व्यवस्था में ‘वर्चस्वादी शक्तियों द्वारा निर्मित धारा’ ही ओमप्रकाश वाल्मीकि की दृष्टि में मुख्यधारा है और दलित साहित्य ... तथाकथित इस मुख्यधारा के विपरीत ध्रुवों पर खड़ा है। विपरीत ध्रुवों पर खड़ी दलित साहित्य-धारा के संबंध में वाल्मीकि जी का कहना है कि। यह एक लंबी संघर्ष यात्रा है, जो बुद्ध, फुले और अंबेडकर से होती हुई यहाँ पहुँची है। यह धारा बुद्ध की मानवीय चिंताओं को अपने भीतर संजोए हुए है। घृणा करनेवालों को भी घृण नहीं करने की सीख देती है।

दलित लेखकों की समतामूलक, समाज व्यवस्था की स्थापना के प्रति प्रतिबद्धता के कारण दलित जीवन की त्रासदी से पुनः गुजरने जैसी पीड़ादाक अनुभूति को फिर से झेलते



हुए सामाजिक दायित्व पूरा करने के लिए प्रामाणिकता के साथ (गुजरे हुए जीवन प्रसंगों, घटनाओं, अपमान, अवहेलना को) प्रस्तुत कर रहे हैं। क्योंकि एक विशिष्ट शोषण व्यवस्था द्वारा रचे गए षड्यन्त्र के तहत यह सब हो रहा है। देश की संपूर्ण उत्पादन व्यवस्था में केवल एक श्रम बेचने वाले साधनहीन गुलाम की जिन्दगी जीने के लिए उसे बाध्य किया गया है। किसी आकांक्षा, आशा, इच्छा या सपनों का पूरा होना उसके हिस्से में आया ही नहीं है। वाल्मीकि जी को बचपन में और बच्चों की तरह पाठशाला में जाकर शिक्षा प्राप्त करना उनके लिए सहज साध्य नहीं बल्की एक त्रासद अनुभव है।

॥अबे, ओ चूहड़े के, मादरचोद कहाँ घुस गया ... अपनी माँ ...”

उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर कांपने लगा था कि त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहा, “मास्साब, वो बैटठ है कौणे में।”

“होडमास्टर ने लपक कर मेरी गर्दन दबोच ली थी। उनकी उंगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था। जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से बाहर खींचकर मुझे बरामदे में ला पटका। चीखकर बोले जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू ... नहीं तो गांड में मिचीं डालके स्कूल से बाहर काढ़ दूंगा।”

दलित कवियों की भाषा किसी की मुहताज नहीं है। इन कवियों का विश्वास है कि ये कविताएँ जिन्दा रहेंगी तो अपने वैचारिक सरोकारों के कारण रहेगी। वे जानते हैं कि भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। वे जिस भाषा का प्रयोग करते हैं उसके माध्यम से अपनी बातें, अपने विचार, अपना संदेश, क्षोभ, क्रोध, राग-विराग, पीड़ा सब कुछ सम्प्रेषित करने में समर्थ हैं। वे आक्रोश की भाषा का प्रयोग करते हैं, तो भाषा का आक्रोश भी देखने में आता है। वे ऐसी भावना का प्रयोग भी करते हैं, जिसमें कुछ लोगों को ऐतराज भी हो सकता है तथा उनके मन में जुगुप्सा भी पैदा हो सकती है, किन्तु ऐसी भाषा अकारण नहीं आती। इसका कोई-न-कोई तार्किक सन्दर्भ होता है।

इस संदर्भ में मुद्राराक्षस लिखते हैं कि - “कोई भी नया कथ्य अपने पूर्व की विचार परम्परा से विद्रोह करता है। उतनी सीमा तक परम्परा के सौन्दर्यबोध सम्बन्धी मूल्यों को



भी चोड़ता है। वह अपनी भाषास अलंकारशास्त्र और अपना छन्द-तन्त्र बनाता है। कबीर ने यही किया था। उन्होंने संस्कृत का प्रयोग भी नहीं किया था और तत्कालीन सवर्ण कथ्य की अवधी और ब्रज को भी स्वीकार नहीं किया था। उन्होंने जिस भाषा का आविष्कार किया था, वह देश के बहुसंख्यक गैर साहित्यिक समाज के बोध की भाषा थी। इसीलिए मात्रिक छन्दों का स्वरूप भी उनका अपना था।”

दलित साहित्य ने संस्कृतनिष्ठ परम्परागत साहित्यिक भाषा, काव्यशैली, प्रस्तुतीकरण को नकार कर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा जो दलितों की पीड़ा, अपमान, व्यथा की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति बन सके। दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की भाषा है जिसमें युगों की यातनाएँ साकार हो उठी हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, श्योराजसिंह बेचैन, जयप्रकाश कर्दम आदि रचनाकारों ने इस भाषा को विस्तार दिया है।

इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की समग्र रचनाओं में एक पारदर्शिकता और समाज में बुनियादी परिवर्तन के लिए आवश्यक चहल-पहल सहजवत दृष्टिगोचर होती है। मेरे शोध का उद्देश्य ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की रचना विशेषताओं की गहरी जाँच-पड़ताल रही है और शोध के दौरान मैंने देखा है कि समाज में आमूलचूल परिवर्तन के लिए विशेष रूप से लेखक की पहल भी बहुत दह तक मायने रखती है। अम्बेडकर की यही आकांक्षा थी कि लेखक वर्ग एकजुट होकर सामने आये और दलितोद्धार का जिम्मा उठाये। वाल्मीकि जी की रचनाओं के पात्र अन्याय सहन करनेवालों में से नहीं है, वे जानते हैं कि अन्याय सहने वाला अन्याय करने वालों से अधिक गुनेहगार होता है। अन्याय का अन्मूलन करने के लिए स्वयं आगे आना और परिवर्तन का जिम्मा उठाना आवश्यक है। शोध के दौरान प्रयास यही रहा है कि रचनाओं की अंतस् में कैसा स्वर विद्यमान हैस मैंने उसी स्वर की तलाश की है।